भाद्र शुक्ल १३, मंगलवार, दिनांक - २७-०९-१९६६
श्लोक-८, प्रवचन - ६०

स्वामी कार्तिकेय।

तिविहेण जो विवज्जदि चेयणमियरं च सव्वहा संगं।
लोयववहारविरदो णिग्गंथत्तं हवे तस्स॥४०२॥

दसलक्षण (धर्म के कथन में) मूल मुनि को लक्ष्य कर बात है न! चारित्र का आराधन है। चारित्र का नौवाँ बोल आकिंचन्य है। धर्मात्मा को मुनि को अन्य परिग्रह तो होता नहीं। स्त्री, पुत्र, वस्त्र, पात्र तो होते नहीं। मात्र उनके **शिष्य, संघ और अचेतन पुस्तक, पिच्छी, कमण्डल आदि धर्मोपकरण...** होते हैं। उनमें भी ममत्व नहीं करते।

मुमुक्षु : पिच्छी हो तो भी ममत्व नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य है। उसमें अपने को क्या?

मुमुक्षु : शिष्य तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिष्य तो कहने में व्यवहार है। गुरु-शिष्य निश्चय में तो है ही नहीं।

कहते हैं कि लोकव्यवहार। लोक का व्यवहार—लौकिक व्यवहार से तो विरक्त है ही, परन्तु अपने में शिष्य, संघ आदि में ममता हो, उस लोकव्यवहार को भी छोड़ दे। चेतन में शिष्य, संघ आदि। अचेतन में मोरपिच्छी, कमण्डल, पुस्तक आदि। उनमें मेरा कुछ नहीं। विकल्प मेरा नहीं तो दूसरी कौनसी चीज़ मेरी है? ओहो! समझ में आया? जो चीज़ मुझसे छूट जाये, वह मेरी नहीं और मुझसे न छूटे, वह मेरी है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अपना स्वभाव अपने से छूटता नहीं। विकल्प, राग, शरीर आदि तो छूट जाते हैं। वह अपनी चीज़ नहीं। पंच महाव्रत के विकल्प भी अपने नहीं। ऐसा आकिंचन

में कहते हैं। समझ में आया? कुछ भी मेरा नहीं। मैं तो शुद्ध आनन्द, ज्ञानानन्द शुद्ध अनन्त स्वभाव से भरपूर सागर हूँ। मुझमें विकल्प भी नहीं तो मेरे शिष्यसम्पदा, संघ, कमण्डल, मोरपिच्छी या पुस्तक, वह मुझमें कहाँ से आये? ऐसा अन्तर में आनन्दस्वरूप का अनुभव करके सहज पर की ममता का छूट जाना, उसका नाम आंकिचन धर्म कहा जाता है। जो अनन्त काल में इसने कभी किया नहीं। समझ में आया? पहले श्रद्धा में तो लिया कि राग भी मेरा नहीं। श्रद्धा में लिया है, सम्यग्दर्शन हुआ है तब से। राग मेरा नहीं, शरीर मेरा नहीं, तीन काल में कोई परचीज़ मेरी नहीं। यह तो सम्यग्दर्शन होने के काल में ही हो गया है। यहाँ तो चारित्र की बात है। समझ में आया? स्वरूप की स्थिरता चैतन्यधाम अनन्त गुण का राम, आतमराम प्रभु मेरी चीज़ है। उसमें लीनता करके पर की ममता छोड़ दे। उसका नाम आकिंचन धर्म संवर और निर्जरा का कारण है। मोक्ष का कारण वह है। यह नौवाँ आकिंचन धर्म (हुआ)।

चलता अधिकार। १३वीं गाथा। कहाँ तक आया? सेठी! खबर नहीं। भावार्थ चलेगा? इतना याद रखा। थोड़ा बाकी रहा है उसमें। निक्षेप में थोड़ा बाकी है। स्पष्टीकरण बराबर नहीं हुआ। यहाँ क्या कहा? भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव वास्तविक तत्त्व का स्वरूप जो अनुभूति से भिन्न है, वास्तविक स्वरूप है, उससे भिन्न चीज़ है, वह चाहे पर्याय में भले हो। नौ तत्त्व के भेद वर्तमान में विकल्प में पर्याय में है। परन्तु वह है, इतना जाननेयोग्य है। आदरणीय तो मात्र चैतन्य ज्ञायक भूतार्थ स्वरूप शुद्ध चैतन्य की अनुभूति में नौ तत्त्व के भेद का अभाव है। समझ में आया? नौ तत्त्व असत्यार्थ हैं। पर्यायदृष्टि से नौ सत्य है। अनुभवदृष्टि से वे नौ असत्यार्थ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है, नौ है, ऐसा सत्यार्थ। आश्रय करनेयोग्य है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। उसमें नहीं? पर्याय है, भेद है। अभेद में दृष्टि में नहीं आते। सामान्य में लक्ष्य करने से भेद तो है थोड़ा, नहीं है,—ऐसा नहीं। सर्वथा अभेद हो जाये तो वीतराग हो जाये। समझ में आया? परन्तु अन्दर में अभेद में भेद दिखाई नहीं देते। पर्याय है,....

मुमुक्षु : विकल्प मिट गये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उनका आश्रय मिट गया। मात्र चैतन्य अनुभूति सत्यार्थ है। उसमें नहीं। पर्याय में है। पहले ज्ञान में लक्ष्य किया था कि है। स्वभाव का अनुभव करने में वे नहीं। समझ में आया ?

उसी प्रकार प्रमाण। प्रथम विचार करने में प्रमाण का ज्ञान होता है, विकल्पात्मक है। है। प्रत्यक्ष ज्ञान, परोक्षज्ञान निमित्त परोक्ष में है, यह सब है। ऐसा यथार्थ वस्तु सिद्ध करने को ज्ञान करना, अनुभव करने में ये प्रमाण, प्रमेय असत्यार्थ हो गये। एक स्वरूप भगवान आत्मा की अनुभूति करने में ये कोई भेद सहायक है नहीं।

इसी प्रकार नय। सामान्य द्रव्य का ज्ञान मुख्यरूप से करना, पर्याय को गौण करना। पर्याय का मुख्य ज्ञान, द्रव्य को गौण करना-ऐसे क्रमसर, भेदसहित पर्याय से द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक का ज्ञान होता है। है इतना, परन्तु अनुभव करने में वह भेद है नहीं। समझ में आया ?

अब निक्षेप। नामनिक्षेप है। नाम पाड़े - ऐसा ज्ञान करने में है। जैसे कोई भगवान का नाम ले तो ऐसा नामनिक्षेप है। ज्ञान करने में है, सम्यग्दर्शन का कारण नहीं। इसी प्रकार भगवान की स्थापना है और उनकी पूजा का शुभभाव है। हो, परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। यही कहते हैं, यही याद करने को कहा। ... धवल में जो आया है कि जिनबिम्ब दर्शन करने से... जम्बूप्रसादजी ने वहाँ बहुत सुना है, जिनबिम्ब दर्शन करने से मिथ्यात्व के टुकड़े हो जाते हैं। हाथी को जैसे सिंह प्रहार करे (तो) टुकड़े हो जाते हैं, वैसे जिनबिम्ब से मिथ्यात्व के टुकड़े हो जाते हैं - ऐसा वहाँ लिखा है। समझ में आया ? यह तो व्यवहारनय के कथन हैं।

यहाँ कहते हैं कि जिनबिम्ब, वह स्थापनानिक्षेप है। वह स्थापनानिक्षेप है। ज्ञेय के चार भेद में नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, योग्यता वर्तमान है, परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; लिखा है, वह तो निमित्त से कथन है। जिनबिम्ब का

लक्ष्य (करता) है, फिर अपने जिनबिम्ब में दृष्टि हुई, तब सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहार तो होता है, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का अर्थ क्या? व्यवहार से कहने में आता है, ऐसा है नहीं, ऐसा है नहीं। व्यवहार उपचार से अन्यथा कहता है। ऐसा है नहीं। व्यवहार कहे ऐसा मान लेना, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? यह टोडरमलजी ने लिया है। एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में मिला दे, वह व्यवहार का लक्षण है। एक द्रव्य के भाव को दूसरे द्रव्य में मिला दे, एक कारण को दूसरे कार्य में मिला दे—ऐसे व्यवहार के कथन हैं, परन्तु ऐसा मान ले तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? एक द्रव्य का भाव दूसरे में मिलाकर व्यवहारनय कहता है। मात्र निमित्त का ज्ञान कराने की बात है। उसके आश्रय से आत्मा को लाभ होता है - ऐसा नहीं। देखो! यह जिनबिम्ब का ही याद आया था, भाई! यह स्थापना है, दर्शन है, शुभभाव है, (वह) जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : जाननेयोग्य है...?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ज्ञेय है, ज्ञेयरूप से है। (चार निक्षेप) ज्ञेय के चार भेद हैं। नाम, स्थापना, योग्यता वर्तमान प्रगट, वह प्रगट भी पर्याय है, उस पर्याय का जानना हो, वह बराबर है (परन्तु) आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? सुनो... सुनो!.... समझ में आया?

इन चारों निक्षेपों का अपने-अपने लक्षणभेद से (विलक्षणरूप से — भिन्न-भिन्नरूप से) अनुभव किये जाने पर वे भूतार्थ हैं,... अनुभव अर्थात् ज्ञान। ज्ञान करने में नाम निक्षेप, स्थापना, द्रव्य-भाव हैं। **और भिन्न लक्षण से रहित...** ये चार लक्षण जो भिन्न पड़े, उन्हें छोड़कर **एक अपने चैतन्यलक्षणरूप जीवस्वभाव का अनुभव करने पर...** भगवान चैतन्यस्वरूप एक स्वभाव है। उसका अनुभव करने पर ये चारों अभूतार्थ हैं। चारों निक्षेप सम्यग्दर्शन की अनुभूति में सहायक नहीं हैं। समझ में आया?

चारों ही निक्षेप से आत्मा का सम्यग्दर्शन नहीं होता - ऐसा कहते हैं। भावनिक्षेप

भी पर्याय है, भाई! सर्वज्ञ की पर्याय हो या अपनी पर्याय हो, उस पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता – ऐसा यहाँ कहते हैं। भावनिक्षेप है, द्रव्यनिक्षेप योग्यता है, स्थापना निक्षेप है, निमित्त है, नाम (है), वह जाननेयोग्य है। भगवान आत्मा...! वर्तमान पर्याय के चार भेद का लक्ष्य छोड़कर अकेला चैतन्यस्वरूप.. देखो! यहाँ कहते हैं। यहाँ कहते हैं, उसे झूठा कहकर वहाँ (धवल में) कहा है? कि भगवान के दर्शन से सम्यग्दर्शन होता है, तो क्या परलक्ष्य से होता है? अन्तर्मुख दृष्टि किये बिना कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। बाहर के लक्ष्य में तो शुभराग है। समझ में आया? पद्मप्रसादजी! अन्तर में एकाग्र होना है, वहाँ बाहर में क्या लक्ष्य करे। जम्बूप्रसादजी! निर्णय करना, हों! भाई! बहुत दूर से आये हो, वहाँ जाने के बाद फिर गड़बड़ होगी। बराबर निर्णय तो करना चाहिए न?

चार निक्षेप, उनका विषय जाननेयोग्य है। व्यवहारनय, निक्षेप को जानता है। नय है, वह विषयी है; निक्षेप, विषय है। नय उस निक्षेप को जानता है कि यह व्यवहार है, स्थापना है, यह द्रव्य है, यह भाव है, परन्तु वह जाननेयोग्य है किन्तु अन्दर आदर करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी गड़बड़ी है। शास्त्र में ऐसा आवे कि भगवान के दर्शन से सम्यग्दर्शन होता है, वेदना से सम्यग्दर्शन होता है, जातिस्मरण से सम्यग्दर्शन होता है – ऐसा आता है। वह तो निमित्त के कथन हैं। ऐसा है नहीं। जातिस्मरण हुआ उससे-परलक्ष्य से सम्यग्दर्शन होता है? समझ में आया? पूर्व भव का जातिस्मरण हुआ, लो! तो क्या उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है? बिलकुल नहीं। समझ में आया? आहाहा! अवधिज्ञान हुआ, तो क्या अवधिज्ञान की पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है?

भगवान तो नियमसार में तो ऐसा कहते हैं कि अपनी पर्याय क्षायिक हो, क्षयोपशम हो या उपशम हो, उसे तो हम हेय कहते हैं, परभाव कहते हैं और परद्रव्य कहते हैं – ऐसे तीन बोल लिये हैं। समझ में आया? नियमसार कहाँ गया? ५० वीं गाथा है। देखो! नियमसार ५० वीं गाथा। क्या कहते हैं? देखो!

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा॥५०॥

पूर्व में जो उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक ऐसे चार भाव कहे, वे हेय हैं। देखो! टीका में है। **शुद्धनिश्चयनय के बल से...** विभावगुण पर्याय के भेद हेय है। किस कारण से? **वे परस्वभाव हैं...** जरा सूक्ष्म बात है। क्षायिकसमकित की पर्याय को भी यहाँ परस्वभाव कह दिया है क्योंकि पर्याय के आश्रय से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। समझ में आया? ५० वीं गाथा बराबर लिख लेना। नियमसार की ५० गाथा।

'**पुव्वुत्तसयलभावा**' पूर्व में जो सकलभाव कहे, वे सब हेय हैं। पाठ में हेय है। पाठ में पहले '**परदव्वं**' है, बाद में '**परसहाव**' है, पश्चात् '**हेयं**' है। अर्थ में पहले लिया है कि हेय है क्योंकि परस्वभाव है क्योंकि परद्रव्य है। समझ में आया? अपनी पर्याय में क्षयोपशम-समकित हुआ, क्षायिकसमकित हुआ, उसे ही यहाँ तो हेय कहने में आया है। क्यों? कि जैसे परद्रव्य में से अपनी नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती, वैसे पर्याय में से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती तो उस पर्याय को भी यहाँ पाठ में परद्रव्य कह दिया है। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं।

'**सग-दव्व-मुवादेयं**' एक द्रव्य सामान्य ज्ञायक अन्तरसत्व परमात्मा, वही अपना '**अप्पा**' अन्तर उपादेय है। समझ में आया? जैसे कर्म और शरीर का लक्ष्य-आश्रय करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। इसी प्रकार पर्याय का क्षयोपशम ज्ञान है, उपशमभाव हो या क्षायिक (भाव हो), उसके लक्ष्य से, उसमें से नयी पर्याय नहीं आती। नयी पर्याय प्रगट होने में अपना '**अप्पा**' त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति है, उसे उपादेय करके नयी पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? तो चार निक्षेप तो कहीं रह गये। उड़ गये।

भाई! यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं कि चार भाव, हों! (मैं) नहीं। विभाव.. विभाव-चार पर्याय विशेष भाव है। भगवान आत्मा एक स्वरूप से चैतन्यबिम्ब बिराजमान है। उसका आश्रय करने से, वही एक उपादेय है। उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, उसके आश्रय से चारित्र होता है, उसके आश्रय से शुक्लध्यान होता है, उसके आश्रय से केवलज्ञान होता है। पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं, चारित्र नहीं, शुक्लध्यान नहीं और केवलज्ञान नहीं। पर का आश्रय करने से विकल्प उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय का आश्रय करने से विकल्प उत्पन्न होता है, क्योंकि

पर्याय में पर्याय है नहीं। एक समय की पर्याय में दूसरी पर्याय नहीं। उस पर्याय का व्यय होता है और दूसरी पर्याय उत्पन्न होती है। उस पर्याय में पर्याय है नहीं; तो यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं कि उस पर्याय को तो हम हेय कहते हैं। चाहे तो उदय की-राग की पर्याय हो, चाहे उपशम हो, चाहे क्षयोपशम की, चाहे तो क्षायिक की हो; उसे हम हेय कहते हैं, उसे हम परभाव कहते हैं और उसे हम परद्रव्य कहते हैं। तीन बोल लिये हैं। **'हेयं परसहावमिदि परदव्वं'** समझ में आया? ओहो!

मुमुक्षु : क्षायिक सम्यग्दर्शन हेय?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षायिक समकित हेय है, क्योंकि समकित में से चारित्र की पर्याय नहीं आती। शान्ति की चारित्रपर्याय स्वभाव के आश्रय से होती है। (पर्याय के आश्रय से) चारित्र प्रगट नहीं होता, यह बात है। आहाहा! बात में इतना अन्तर है, मार्ग में बहुत फेरफार हो गया है।

भगवान! तेरा द्रव्य ही एक स्वरूप है, उसे ही हम तो परद्रव्य कहते हैं - ऐसा यहाँ आचार्य कहते हैं। परद्रव्य को तो परद्रव्य कहते ही हैं, देव-गुरु-शास्त्र, स्थापनानिक्षेप, साक्षात् समवसरण में बिराजमान प्रभु परद्रव्य है। उनके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता।

मुमुक्षु : दिव्यध्वनि से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिव्यध्वनि परद्रव्य है। यहाँ तो कहना है कि दिव्यध्वनि तो परद्रव्य है, भगवान परद्रव्य है, समवसरण परद्रव्य है, सम्मेदशिखर परद्रव्य है तो उनके आश्रय से सम्यग्दर्शन तीन काल में नहीं होता।

यहाँ तो कहते हैं कि अपने ध्रुव आत्मा के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन हुआ, उस सम्यग्दर्शन के आश्रय से भी शुद्धि की नयी पर्याय नहीं होती। अपने शुद्ध (स्वरूप के) आश्रय से नयी शुद्धपर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! अरे! चारित्र की पर्याय को यहाँ परद्रव्य कह दिया (कि) जो चारित्र अपने शुद्ध द्रव्य के अवलम्बन से उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? ५० वीं गाथा समझे तो समझ में आये ऐसी है, हों! ऐसी बात है।

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार, शुद्धभाव अधिकार। इस शुद्धभाव का अर्थ

पर्याय नहीं। शुद्धभाव अर्थात् त्रिकाल। जो शुभ-अशुभ और शुद्धपर्याय है, वह बात नहीं। यहाँ शुद्धभाव अधिकार है तो यहाँ पहली ही गाथा में लिया है कि भगवान आत्मा... पहले भी ३८ गाथा में लिया है। वही बात यहाँ ५० (गाथा में) ली है। समझ में आया? देखो! ३८।

'**जीवादिबहित्तच्चं हेयम्**' - ऐसा पाठ है। शुद्धभाव अधिकार की ३८ वीं गाथा है। वह ५० है, यह ३८ वीं है एक ही अधिकार है। '**जीवादिबहित्तच्चं हेयम्**' जीव, अजीव विकल्प परद्रव्य आदि, संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि पर्याय '**हेयम्**' '**जीवादिबहित्तच्चं हेयम्**' '**उपादेयमप्पणो अप्पा**' एक अपना '**अप्पा**' शुद्ध ध्रुवस्वभाव है, वही आदरणीय है, आश्रय करने योग्य है। यह ३८ वीं गाथा है, शुद्धभाव अधिकार की ३८ वीं, वह शुद्धभाव अधिकार की ५०वीं (थी) समझ में आया? अरे! परन्तु शास्त्र क्या कहते हैं यह समझना नहीं और अपना अभिप्राय छोड़ना नहीं, अपनी पकड़ छोड़ना नहीं। नहीं.. नहीं.. नहीं.. परन्तु सुन तो सही।

जहाँ भगवान आत्मा अपना शुद्ध चैतन्य ध्रुव पर दृष्टि देने से सम्यक्त्व हुआ, स्थिरता करने से चारित्र हुआ। उस चारित्र के आश्रय से भी शुक्लध्यान नहीं होता क्योंकि वह पर्याय है, उस पर्याय को भी यहाँ हेय कहा है, परभाव कह दिया, परद्रव्य कह दिया है। स्वद्रव्य शुद्धध्रुव को ही स्वद्रव्य कहा है। आहाहा! समझ में आया? भगवान परमात्मस्वरूप एक समय में पूर्ण है। शुद्ध ज्ञायक चिदानन्द प्रभु की अनुभूति करने से, उसका आश्रय करने से अनुभव होता है, उसका आश्रय करने से शुक्लध्यान होता है, उसका आश्रय करने से केवलज्ञान होता है। पर्याय का आश्रय करने से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। समझ में आया?

तीन बोल लिये हैं। हेय, परभाव, परद्रव्य। ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्यदेव की सिद्ध करने की पद्धति (गजब है)! भगवान आत्मा...! एक समय की उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय पर्याय है न? वह तो व्यवहार आत्मा है। क्या कहा? सुनो! और दूसरी बात आ गयी। राग तो आस्रव है, परन्तु सम्यक् शुद्ध चैतन्यद्रव्य के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन, क्षायिक चारित्र पर्याय उत्पन्न हुई, वह व्यवहार आत्मा है, पर्याय आत्मा है, पर्याय के अंशरूप व्यवहार आत्मा है; वह निश्चय आत्मा नहीं। आहाहा! जम्बूप्रसादजी!

मुमुक्षु : पर्यायदृष्टि करनेवाला पर्यायमूढ़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें एकाकार हो तो मूढ़ है, परन्तु पर्याय है—ऐसा जानकर द्रव्य का आश्रय करे तो ज्ञानी है। समझ में आया?

यहाँ तो थोड़ा दूसरा कहना था कि भगवान आत्मा ध्रुव शुद्ध वस्तु है, उसे चार निक्षेप के आश्रय से उसे आनन्द की उत्पत्ति या सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति नहीं होती। अब यह शुद्ध भगवान आत्मा एक स्वभाव के आश्रय से जो दशा हुई, उस दशा को भी, आचार्य यहाँ कहते हैं कि हम उसे हेय कहते हैं, परभाव कहते हैं, परद्रव्य कहते हैं। व्यवहार से आत्मा (कहते हैं)। शुद्धपर्याय को व्यवहार से आत्मा (कहते हैं) न्याय सुनो!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग की पर्याय, स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हुई, उस मोक्षमार्ग की पर्याय को हम व्यवहार आत्मा कहते हैं, व्यवहार आत्मा का अर्थ वह (कि) निश्चय आत्मा नहीं। निश्चय आत्मा का अर्थ-वह (पर्याय) परद्रव्य है। आहाहा! गजब बात है। राजबहादुरजी! बहुत सूक्ष्म है भाई! व्यवहार है न? भाई! व्यवहार अन्यथा कहता है, वास्तविक द्रव्य को (कहता नहीं)। आहाहा! गजब शैली है।

कहते हैं कि आश्रय करनेयोग्य नहीं, परन्तु उसे यहाँ परद्रव्य क्यों कहा यह सिद्ध किया। क्षायिकभाव स्वभाव के आश्रय से हुआ, स्वभाव के आश्रय से चारित्र हुआ, छठे गुणस्थान में चारित्र आदि; उस पर्याय को यहाँ हेय कहा, परभाव कहा, परद्रव्य कहा। व्यवहार से उस चारित्रपर्यायसहित शुद्ध निर्मल पर्याय है, वह व्यवहार आत्मा है। निश्चय आत्मा एक समय की पर्यायरहित त्रिकाली ध्रुव, वह निश्चय आत्मा है। आहाहा!

फिर से कहते हैं। ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्यदेव की कथन पद्धति कोई गजब शैली है! यह तो भाई! दूसरे प्रकार से कहा कि आत्मा एक समय का शुद्ध ध्रुव त्रिकाल चैतन्यमूर्ति वह निश्चय आत्मा है और उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय उत्पन्न हुई। अब हुई, राग तो अनात्मा है, उसे एक ओर रखो, अभी राग बाकी है न? पर्याय में पूर्ण वीतराग नहीं तो (राग है), वह तो अनात्मा है, आस्रव में गया परन्तु शुद्धपर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की-निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय उत्पन्न हुई, उसे

एक समय का अंश कहकर व्यवहार आत्मा कहा। एक समय की पर्याय है न? क्या कहा, समझ में आया?

जो प्रगट है, वह तो एक समय की पर्याय है, दूसरे समय में दूसरी होती है, तीसरे समय में तीसरी होती है। आहाहा! केवलज्ञान है, वह एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान दो समय नहीं रहता। दूसरे समय दूसरा (होता है)। वैसा ही, परन्तु दूसरा (होता है)। जम्बूप्रसादजी! केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं। गुण है, वह तो त्रिकाल सदृश रहते हैं, पर्याय विसदृश है। एक समय की केवलज्ञान पर्याय हुई, वह दूसरे समय में वही नहीं रहती, वैसा ही होता है परन्तु वह नहीं, पर्याय दूसरी है। अतः केवलज्ञान भी एक समय का अंश सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। ओहोहो! गजब बात है! सद्भूतव्यवहारनय का विषय है तो उसे व्यवहार आत्मा कहा। ओहोहो! गजब शैली है। समझ में आया?

कहते हैं कि नीचे साधकदशा में केवलज्ञान है नहीं। क्षायिक समकित हो, चारित्रपर्याय हो, एक समय के त्रिकाल ध्रुव को सत्यार्थ आत्मा कहते हैं, सत्यार्थ आत्मा कहते हैं। एक समय की पर्याय को असत्यार्थ कहते हैं। त्रिकाल की अपेक्षा से असत्यार्थ कहते हैं और व्यवहार की अपेक्षा से उसे व्यवहार आत्मा कहते हैं। ऐ... हिम्मतभाई! धीरे समझो, भाई! फिर से कहेंगे एकदम नहीं छोड़ देंगे। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसा लगता है कि एक ही है, परन्तु प्रत्येक समय दूसरी पर्याय होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक समय दूसरी है। वह तो उत्पाद होता है न! समय-समय का उत्पाद नया-नया है।

यहाँ तो दूसरी बात कहनी है कि आत्मा में जो पर्याय उत्पन्न होती है, शुद्धपर्याय, शुद्धपर्याय। वह शुद्धपर्याय, शुद्धद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई है, परन्तु उस शुद्धपर्याय को निश्चय आत्मा नहीं कहते; व्यवहार आत्मा कहते हैं क्योंकि अंश है। एक समय की पर्याय, चारित्र-मोक्षमार्ग की पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय व्यवहार आत्मा है क्योंकि अंश है, त्रिकाल का एक भेद है। त्रिकाल को निश्चय आत्मा कहते हैं और अंश को व्यवहार आत्मा कहते हैं। व्यवहार कहा तो निश्चय से उसे परद्रव्य कह दिया। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रगट हुई तो पर-भिन्न है, भिन्न है। ध्रुव से भिन्न है। उत्पादरूप है। ध्रुव तो भिन्न रह गया। उत्पादरूप हुई तो उतनी पर्याय को-शुद्धपर्याय को निश्चय आत्मा नहीं कहते। निश्चय आत्मा तो कायम रहे,उसे निश्चय आत्मा कहते हैं। अरे! यहाँ तो दूसरा लेना है। यहाँ परद्रव्य कहा न? व्यवहार से आत्मा और निश्चय से परद्रव्य। आहाहा! गजब बात है, भाई! अभी कहेंगे, कहेंगे। ऐसे नहीं चला देंगे।

आत्मा है, वह एक समय में ध्रुव सदृश चिदानन्द अनादि-अनन्त एकरूप वस्तु है। उसमें उत्पाद-व्यय नहीं, उत्पाद-व्यय नहीं। उत्पाद-व्ययरहित जो ध्रुवस्वरूप है, उसे यहाँ निश्चय आत्मा कहते हैं। समझ में आया? परमात्मप्रकाश है? परमात्मप्रकाश की ४३ गाथा में ऐसा लिया है। पहला अधिकार और दूसरा अधिकार दोनों में ४३ (गाथा है)।

उत्पाद-व्ययरहित ध्रुव वही यथार्थ वास्तविक आत्मा है—ऐसा लिखा है। उसमें अपने आया न? नियमसार में आ गया, नियमसार में आ गया। क्या कहते हैं? नियमसार में वास्तविक आत्मा कहाँ आया? आया था न? शुद्धभाव में आया या किसमें आया? शुद्धभाव। यह आया, लो! भाषा देखो! अनादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाला सहज परमपारिणामिक जिसका स्वभाव ऐसा कारण परमात्मा वह वास्तव में आत्मा है। अनादि-निधन अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाव शुद्ध सहज परमपारिणामिकभाव स्वभाव कारणपरमात्मा ही वास्तव में आत्मा है। उसे ही आत्मा कहते हैं। त्रिकाल ध्रुव को वास्तविक आत्मा कहा। उत्पाद-व्यय को वास्तविक आत्मा (कहा) नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखो, वास्तव में वह आत्मा है। यहाँ टीका में पाठ है न? एक समय का ध्रुव वास्तव में आत्मा है। वास्तव में कहो या सच्चा आत्मा कहो। एक समय की पर्याय वास्तव में आत्मा नहीं, वास्तविक आत्मा नहीं। वह पर्यायरूप व्यवहार आत्मा है। आहाहा! सेठ! बहुत सूक्ष्म है।

फिर से, यहाँ तो ऐसे का ऐसा कैसे जाने दें? बराबर पक्का करना चाहिए या नहीं? एक समय का जो ध्रुव है, उसे यहाँ वास्तविक आत्मा कहा है। वास्तविक तो एक समय की

पर्याय जो है, चारित्र की-मोक्षमार्ग की पर्याय, वह वास्तविक आत्मा नहीं। भाई! वास्तविक नहीं तो अवास्तविक आत्मा सिद्ध हुआ। अवास्तविक अर्थात् व्यवहार आत्मा हुआ। आहाहा! गजब बात है! सन्तों की कथनी..! समझ में आया? ऐसी बात दुनिया को सुनना कठिन (पड़े) ऐसी बात है। समझ में आया?

कहते हैं कि एक समय का भगवान आत्मा, उत्पाद-व्यय निकाल दो, उत्पाद-व्यय नहीं; उत्पाद-व्यय एक समय की पर्याय है। चाहे तो सिद्ध हो, परन्तु वह उत्पाद-व्यय पर्याय है। क्या (कहा)? सिद्ध भी एक समय की पर्याय है। द्रव्य त्रिकाली कायम है। तो एक समय की पर्याय वह उत्पाद-व्यय है। वर्तमान पर्याय व्यवहारनय का विषय हुआ और त्रिकालस्वरूप जो भगवान एक स्वरूप है, वह निश्चय-वास्तविक आत्मा है। आहाहा! यह परिणमन व्यवहार आत्मा हो गया। पर्याय है या नहीं? वह पर्याय है। पर की क्रिया तो कहीं जड़ में रह गयी, वह तो व्यवहार है ही नहीं। दया, दान का राग आया, वह व्यवहार है नहीं, वह तो पर विकार है, परन्तु यहाँ तो व्यवहार आत्मा किसे कहते हैं? आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुण का एक स्वरूप ध्रुव चैतन्य प्रभु को वास्तविक आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं। दोपहर को यह चलता है। अकार्यकारण की शक्ति उसमें पड़ी है। उस आत्मा को वास्तविक आत्मा कहा और उस आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो पर्याय उत्पन्न हुई.. समझ में आया? अपने स्वभाव के आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट हुई, वह एक समय का अंश है, उत्पाद-व्यय अंश है; वह वास्तविक त्रिकाल नहीं तो उसे व्यवहार आत्मा कहा, अवास्तविक आत्मा कहा। समझ में आया? आहाहा! अवास्तविक आत्मा कहो.. पर्याय, हों! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी पर्याय जो कि त्रिकाल आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई है, उस पर्याय को भगवान वास्तविक आत्मा नहीं कहते, क्योंकि एक समय की पर्याय है, वह व्यवहारनय का विषय हो गया। व्यवहार है, वह अभूतार्थ है। वह त्रिकाल भूतार्थ से भिन्न है। एक स्वरूप त्रिकाल है, उसे भूतार्थ आत्मा कहते हैं, सत्यार्थ आत्मा कहते हैं; एक समय की पर्याय को, अनित्यपने को व्यवहार आत्मा कहते हैं। उस व्यवहार आत्मा को ५० गाथा में कहा कि

हेय है, परभाव है, परद्रव्य है। आहाहा! गजब बात है! समझ में आया?

देखो! यह परमात्मप्रकाश। दोनों अधिकार में ४३ है। देखो! ४३। **आगे यद्यपि पर्यायार्थिकनयकर उत्पादव्ययकर सहित है, तो भी द्रव्यार्थिकनयकर उत्पादव्ययरहित है, सदा ध्रुव (अविनाशी) ही है, वही परमात्मा...** वही परमात्मा (अर्थात्) अपना (आत्मा)। **निर्विकल्प समाधि के बल से तीर्थंकरदेवों ने देह में भी देख लिया है,...** क्या कहते हैं? फिर से - अपनी पर्याय में जो उत्पाद-व्यय होता है, पर्याय में; कर्म अलग, शरीर अलग... अलग। पूरा परमात्मप्रकाश रेकार्डिंग में उतर गया है, सब रेकार्डिंग में उतर गया है।

देखो! पाठ है। **अथोत्पादव्ययपर्यायार्थिकनयेन संयुक्तोऽपि यः द्रव्यार्थिकनयेन उत्पादव्ययरहितः स एव परमात्मा निर्विकल्पसमाधिबलेन जिनवरैर्देहेऽपि दृष्ट इति निरूपयति**-भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुण का पुंज है। उसमें गुण तो अनन्त है—ऐसा ध्रुव, उत्पाद-व्यय की पर्यायरहित भगवान तीर्थंकरदेव ने देह में, देह का स्पर्श किये बिना आत्मा रहता है। ओहो! उसे देह का तो स्पर्श नहीं परन्तु उसे उत्पाद-व्यय का स्पर्श नहीं। सुनो! उत्पाद-व्यय का तादात्म्य स्पर्श नहीं। एक समय की पर्याय उत्पाद-व्यय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आनन्द जो मोक्ष का मार्ग, हों! शुद्ध द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए, उस एक समय की पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहा! यह फिर आ गयी, १७२ गाथा, प्रवचनसार १७२ गाथा में कहते हैं कि पर्याय को द्रव्य आलिंगन नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

शुद्ध चैतन्यधातु, द्रव्यवस्तु जिसमें अनन्त गुण पड़े हैं। अकार्यकारण गुण आदि, ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण का धाम, उसे सर्वज्ञ परमेश्वर वास्तविक आत्मा कहते हैं। ऐसे आत्मा को, देह का स्पर्श किये बिना भगवान उसमें रहते हैं, तो भगवान तीर्थंकरदेव ने उत्पाद-व्ययरहित पूरा आत्मा देह से भिन्न देख लिया है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा उत्पाद-व्ययकर पर्याय से सहित है तो भी द्रव्यार्थिकनयकर उत्पाद-व्ययरहित है, सदा अविनाशी ही है। वही परमात्मा है, उसी वास्तविक आत्मा की अन्तर्दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। प्रथम में प्रथम धर्म की शुरुआत वहाँ होती

है। सिर फोड़कर मर जाये, क्रियाकाण्ड करके, व्रत पालन करके (मर जाये), परन्तु उसे सम्यग्दर्शन दूसरे प्रकार से नहीं होता। समझ में आया? मर जाये, उपवास कर-करके शरीर का चूरा हो जाये, महीने-दो महीने के मासखमण करके, दया के भाव करके मर जाये, चूरा हो जाये (तो भी) उसमें धर्म बिलकुल नहीं। भगवान आत्मा एक समय का ध्रुव चैतन्य प्रभु को पकड़ने से-उसके आश्रय से धर्म होता है। (उसका आश्रय) करने से धर्म होता है, दूसरी कोई पद्धति नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं कि जो धर्म प्रगट हुआ, वह भी उत्पाद-व्ययवाली पर्याय (है जो) व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! जिसे राग से मुक्ति होती है, वह तो व्यवहार है - ऐसा है नहीं। परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग से मुक्ति होती है, वह निश्चयमोक्षमार्ग तो राग की अपेक्षा से कहा, परन्तु त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय व्यवहार है क्योंकि अंश-भेद है। समझ में आया? अरे! सर्वज्ञ ने क्या देखा और क्या कहा? उसका पता नहीं होता और उसे धर्म हो जाये... धूल में भी धर्म नहीं। मर गया अनन्त काल से। चौरासी के अवतार (किये)। जैन का दिगम्बर साधु निवृत्ति लेकर अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ पै निज आत्मज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।' भगवान आत्मा एक समय में अखण्डानन्द पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड है, उसकी अन्तर्दृष्टि करने से, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। लाख बार चार निक्षेप से, भगवान की मूर्ति से और भगवान के दर्शन से सम्यग्दर्शन तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? जम्बूप्रसादजी! आहाहा! गजब बात, भाई!

भाई! क्या कहा? कि प्रभु आत्मा तो एक समय का (में) अनादि-अनन्त ध्रुव, जिसमें अनन्त परमात्मा स्थित हैं। किसमें? कि द्रव्य में। द्रव्य जो एक समय का है, उसमें तो अनन्त सिद्ध परमात्मा स्थित हैं। अनन्त सिद्ध! क्योंकि सिद्ध, वह पर्याय है। ऐसी अनन्त पर्याय, सिद्ध की अनन्त पर्याये, आत्मद्रव्य में अनन्त पर्याय पड़ी है। ऐसा भगवान आत्मा परमात्मा स्वयं है, उसका अनुभव करके उसका आश्रय करना, वह सम्यग्दर्शन है। इसके अतिरिक्त क्रियाकाण्ड करके मर जाये, लाख दूसरा करे और उसमें धर्म माने तो महामिथ्यात्व सेवन करता है। मिथ्यात्व-पाप क्षण-क्षण में (होता है)। महापाप तो वह है। मिथ्यात्व जैसा कोई पाप नहीं। आहाहा! समझ में आया? राग

से धर्म होता है और दया से धर्म होता है और मैं पर की दया पाल सकता हूँ... मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। पापी है, पापी - महा-बड़ा पापी है। मिथ्यात्व जैसा (बड़ा पाप कोई नहीं है)। सप्त व्यसन के पाप से भी मिथ्यात्व का पाप अनन्तगुना है। समझ में आया? ए.. शोभालालजी! यहाँ कठिन बात है।

मुमुक्षु : सरल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल है? सेठ भी अब प्रसन्न हो गया, लो!

भगवान आत्मा...! यहाँ ४३ वीं गाथा में तो ऐसा कहना है कि उत्पाद-व्ययरहित जो आत्मा, वह आत्मा है, वह वास्तविक आत्मा है। यहाँ भी यह कहा कि वास्तविक आत्मा, कारणपरमात्मा, एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप, वही वास्तविक आत्मा है। जो पर्याय है, वह वास्तविक आत्मा नहीं। शरीर तो... आहाहा! देखो! मस्तिष्क में दूसरा प्रश्न आया। शरीर का प्रश्न हुआ था न? पण्डितजी! जयपुर... जयपुर..! पण्डित की उपस्थिति में वहाँ जयपुर में शरीर का प्रश्न हुआ था। क्या शब्द? जीवित शरीर से धर्म होता है या नहीं? ऐसा प्रश्न (हुआ था)। भगवान! सुन तो सही! आत्मा में एक ऐसा गुण है कि स्वधर्मव्यापक है। राग, शरीर में तो आत्मा कभी व्याप्त हुआ ही नहीं। आत्मा में एक स्वधर्मव्यापक नामक गुण है। सैंतालीस शक्ति में एक गुण है। समझे? सैंतालीस शक्ति है न? इस समयसार में पीछे है। समझ में आया? अपने अनन्त गुण में स्वधर्म में व्यापक है। कभी शरीर में, राग में आत्मा व्यापक नहीं है। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, प्रभु!

यह दशलक्षणी का व्याख्यान है। यह मोक्षमार्ग का व्याख्यान है। आकिंचन का है न? यह उत्पाद-व्यय मेरे नहीं, ध्रुव मेरा है - यह आकिंचन है। लो! शरीर तो मेरा नहीं, वाणी मेरी नहीं, खाना-पीना सब जड़ की क्रिया है, मेरी नहीं और अन्दर में दया, दान का राग आवे, वह मेरा नहीं। वह तो नहीं परन्तु उत्पाद-व्यय की पर्याय मेरे त्रिकाल में है - ऐसी पर्याय मुझमें नहीं। मेरी हो तो कायम रहे। एक समय की है। एक समय का व्यवहार है, एक समय की है। एक समय की है, त्रिकाल नहीं—इस अपेक्षा से तो ग्यारहवीं गाथा में अभूतार्थ कह दी है। **ववहारोऽभूदत्थो** पर्याय असत्यार्थ है, इस

अपेक्षा से, हों! त्रिकाल में नहीं, इस अपेक्षा से। पर्याय तो पर्याय है। समझ में आया? आहाहा! अरे! इसे सत्य का पता नहीं होता और धर्म होता है और कल्याण होगा... मर जायेगा अब। चौरासी के अवतार में अनन्त बार गोते खाये। निगोद के रास्ते हो और माने कि हम कुछ धर्म के रास्ते हैं।

यहाँ तो कहते हैं, एक बार सुन तो सही! चैतन्य भगवान एक समय में ध्रुव बिराजमान है, उसे हम निश्चय आत्मा, वास्तविक आत्मा कहते हैं। क्यों? कि उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग और मोक्ष प्रगट होता है। उसके आश्रय से ही मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, वह भी उत्पाद-व्यय की पर्याय है। उस उत्पाद-व्यय की पर्याय के आश्रय से नयी शुद्धि उत्पन्न नहीं होती; इसलिए निश्चय मोक्षमार्ग को भी हम व्यवहार आत्मा कहते हैं। निश्चय से उसे परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! गजब बात है! कहाँ की कहाँ बात आ गयी! कहो, जिनेश्वरदासजी! याद रहना जरा कठिन है। बोल थोड़ा सूक्ष्म आ गया है न!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रमाण, नय, निक्षेप चार। भगवान हो, स्थापना हो, योग्यता अपनी पर्याय में भावनिक्षेप हो, भगवान की पर्याय में केवलज्ञान भावनिक्षेप है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। भावनिक्षेप पर्याय है। वर्तमान प्रगट पर्याय को भावनिक्षेप कहते हैं। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता तो भगवान के दर्शन से और बाहर से सम्यग्दर्शन होता है—ऐसा तीन काल में नहीं। व्यवहार है अवश्य, शुभभाव है। हो - परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है या ज्ञान होता है या चारित्र होता है—ऐसा तीन काल में नहीं है। कहो, समझ में आया? राजबहादुरजी! ए... वेणीप्रसादजी! गजब बात है! प्रभु! तेरी ऐसी लीला है, उसकी तुझे खबर नहीं। अभी खबर नहीं, बेखबरी अज्ञानी मूढ़ है और मानता है कि हमें धर्म होता है। कहाँ है तेरा धर्म? समझ में आया?

एक समय में भगवान आत्मा... यहाँ तो कहते हैं कि कोई ऐसा कहे कि भगवान के दर्शन से समकित होता है तो यहाँ कहते हैं कि विलक्षण व्यवहारनय के विषय में गया। उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! **अपने चैतन्यलक्षणरूप जीवस्वभाव का अनुभव करने पर...** सम्यग्दर्शन होता है। अपने आश्रय से अनुभूति होती है। किसी भी

विकल्प से या पर के आश्रय से नहीं होती। साक्षात् परमेश्वर समवसरण में बिराजमान हो तो उनके आश्रय से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। दिव्यध्वनि के आश्रय से नहीं होता। पहले यह आता था न? दिव्यध्वनि से लाभ नहीं? सुन तो सही! दिव्यध्वनि सुनता है तो वह विकल्प-शुभराग है, क्योंकि वह परद्रव्य है। समझ में आया? उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता। राग मन्द करके सुनता है, ज्ञान का क्षयोपशम है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

द्रव्य के आश्रय से होता है। अपने आश्रय से (होता है)। (दूसरे सब) निमित्त के कथन हैं। (भगवान की प्रतिमा के दर्शन से सम्यग्दर्शन हुआ) ऐसा कहा, परन्तु ऐसा है नहीं, है नहीं, परन्तु निमित्त का ज्ञान कराने को कहा। आरोप आता है। है नहीं (उसे कहा) व्यवहारनय का विषय ही ऐसा ही है कि है नहीं उसे कहना, उसका नाम व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया?

भाई! तूने तेरा आत्मा, सर्वज्ञ ने देखा, वैसा तूने कभी माना नहीं। माने तब तो सम्यग्दर्शन हो जाये और जन्म-मरण का अन्त आ जाये। चाहे तो ९६ हजार स्त्री के वृन्द में पड़ा हो, समझ में आया? आता है न? ९६ हजार। उसमें ८४ हजार है। उसमें पड़ा हो तो क्या है? भोग की वासना हो तो राग-दोष है। अन्तर में राग से भिन्न मेरी चीज़ अखण्डानन्द प्रभु है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ है तो बन्ध है ही नहीं, चल! समझ में आया? मिथ्यात्व से बन्ध पड़ता है, उसे ही बन्ध कहने में आया है। दोपहर को यह चलता है। आहाहा! अभी तो राग मन्द करे और ऐसा करे और वैसा करे... मन्द करना पड़े, करना पड़े। क्या करना पड़े? राग मन्द करना-ऐसी कर्ताबुद्धि है, तब तक मिथ्यादृष्टि है। भगवान आत्मा राग से भिन्न है। राग करना पड़ता है न! करना तो पड़ता है न! मूढ़ है। चैतन्य का खून करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? दूसरे की हिंसा करे, न करे; अपनी महान हिंसा करता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, अपने तो यह विषय जरा सूक्ष्म (चलता है) कि उत्पाद-व्यय-पर्याय को भी निश्चय से आत्मा नहीं कहा। व्यवहार आत्मा कहा। पर्याय है या नहीं? पर्याय को व्यवहार कहा, द्रव्य को निश्चय कहा, तो एक समय की सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्र पर्याय प्रगट हुई, वह पर्याय है तो पर्याय का विषय व्यवहारनय का विषय हो गया। अतः व्यवहार आत्मा हुआ, निश्चय आत्मा नहीं हुआ। यह भारी गजब बात! तो दया, दान के विकल्प तो कहीं रह गये, वे तो धूल में गये। वह राग तो आस्रवतत्त्व में है। आहाहा! बहुत सत्य बात है, परन्तु यही सत्य है, यही सत्य है। शुरुआत का सत्य यही है। तीन काल-तीन लोक में दूसरा कोई सत्-यथार्थ है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : गहरा स्वरूप...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में गहरा स्वरूप भगवान आत्मा है, वहाँ गोता खाना पड़ेगा... वहाँ अन्दर बारम्बार दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होगा, दूसरा कोई उपाय नहीं है। लाख क्रियाकाण्ड करके मर जाये, अपवास और दया, दान और व्रत... आहाहा! राजबहादुरजी! क्या इसमें अकेला निश्चयाभास नहीं होता? अरे! सुन तो सही! तूने निश्चय क्या है, यह (सुना नहीं)।

भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु ही वास्तविक आत्मा है। उसके आश्रय से अनुभव करने से अनुभूति होती है। भगवान के निक्षेप से और सामने परमात्मा तीर्थंकर भावनिक्षेप हो तो भी उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? तो फिर दया, दान के परिणाम से सम्यग्दर्शन होता है और मैं पर की क्रिया कर दूँ... समझ में आया? (ऐसा माननेवाला) महा-बड़ा पापी मूढ़ है। मैं परद्रव्य में कुछ संस्कार डालता हूँ, परद्रव्य में मैं कुछ सुधार करता हूँ (-ऐसा माननेवाला) बड़ा पापी मूढ़ मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : बहुत दूर की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत दूर की बात रही। हाँ, बहुत स्थूल मिथ्यात्व है। यह तो बड़ा स्थूल मिथ्यात्व है। समझ में आया?

यहाँ तो (कहते हैं) राग के विकल्प से मुझे लाभ होगा (-ऐसा माननेवाला) पापी मिथ्यादृष्टि (है) तेरी दृष्टि झूठी है, वह सत्य का खून करनेवाला है। समझ में आया? आहाहा! वह तो ठीक, परन्तु कहते हैं कि पर्याय के आश्रय से लाभ होगा—

(ऐसा माननेवाला) मूढ़ है। यहाँ तो राग एक ओर रह गया। क्षयोपशम ज्ञान है, क्षयोपशम ज्ञान है, क्षयोपशम दर्शन है, क्षयोपशम वीर्य है। पर्याय में है न? उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है (-ऐसा माननेवाला) पर्यायमूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? यह सब निक्षेप में से आ गया। यहाँ तो भावनिक्षेप ख्याल में था न! परन्तु भावनिक्षेप केवलज्ञान है। उसके आश्रय से भी नहीं। आहा!

पर्याय तो एक समय की दशा है। उसका आश्रय करे तो विकल्प होता है। एक समय की पर्याय में दूसरी पर्याय रहती है? एक समय की पर्याय में दूसरी पर्याय रहती है? अनन्त शुद्ध पर्याय तो द्रव्य में रहती है। द्रव्यस्वभाव त्रिकाल भगवान आत्मा की रुचि करने से, अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? ओहो!

इस प्रकार इन प्रमाण-नय-निक्षेपों में भूतार्थरूप से एक जीव ही प्रकाशमान है। नवतत्त्व में, प्रमाण, नय, निक्षेप में भगवान आत्मा अकेला सत्य प्रभु, सत्य प्रभु, सच्चिदानन्द ध्रुव प्रभु ही बिराजमान है। उसे सत्य आत्मा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ - इन प्रमाण, नय, निक्षेपों का विस्तार से कथन तद्विषयक ग्रन्थों से जानना चाहिये; उनसे द्रव्यपर्यायस्वरूप वस्तु की सिद्धि होती है। क्योंकि जानने से द्रव्य क्या है, पर्याय क्या है? - उसका बोध होता है। बोध (अर्थात् यहाँ) यथार्थ ज्ञान की बात नहीं है। साधारण बोध होता है, ऐसा। **वे साधक अवस्था में तो सत्यार्थ ही हैं...** प्रमाण से, नय से वास्तविक वस्तु की लक्ष्य में सिद्धि करना, वह प्रथम अवस्था में सच्चा है। **क्योंकि वे ज्ञान के ही विशेष हैं। उनके बिना वस्तु को चाहे जैसे साधा जाये...** अपनी कल्पना से (साधने जाये और) भगवान ने कहा वैसे नय, निक्षेप से, प्रमाण से वस्तु की सिद्धि न करे तो विपरीत हो जाये, विपरीत हो जाये।

अवस्थानुसार व्यवहार के अभाव की तीन रीतियाँ हैं : प्रथम अवस्था में प्रमाणादि से यथार्थ वस्तु को जानकर ज्ञान-श्रद्धान की सिद्धि करना;... प्रमाण से केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक को देखता है। ऐसे पर्याय को पहले विकल्प से निर्णय करना। मति-श्रुत परोक्ष है, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान देशप्रत्यक्ष है—ऐसा विकल्प से बराबर निर्णय करना। ऐसा निर्णय करके, पश्चात् उसे छोड़कर मात्र ज्ञायकभाव का

आश्रय करने से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होता है। यह धर्म की पहली सीढ़ी और पहली शुरुआत (है)। समझ में आया? इसके बिना तीन काल-तीन लोक में किसी क्षेत्र में दूसरे प्रकार से धर्म नहीं होता।

ज्ञान-श्रद्धान के सिद्ध होने पर श्रद्धान के लिये प्रमाणादि की कोई आवश्यकता नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान में वस्तु की प्राप्ति हुई, पश्चात् प्रमाण की कुछ जरूरत नहीं। **किन्तु अब यह दूसरी अवस्था में प्रमाणादि के आलम्बन से विशेष ज्ञान होता है...** सम्यग्दर्शन होने के बाद भी विशेष ज्ञान करने से, क्रम-क्रम से स्वरूप में स्थिरता करने से **राग-द्वेष-मोहकर्म के सर्वथा अभावरूप यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है;...** क्योंकि प्रमाण का ज्ञान करना है न? द्रव्य सामान्य त्रिकाल है और पर्याय एक समय की है। उसमें आ गया कि द्रव्य के आश्रय से लाभ है। द्रव्य के आश्रय से लाभ हुआ - ऐसा विशेष ज्ञान करने से दृष्टि पहले तो जानती है, तो विशेष ज्ञान से **राग-द्वेष-मोहकर्म के सर्वथा अभावरूप यथाख्यातचारित्र प्रगट होता है; उससे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।**

केवलज्ञान होने के पश्चात् प्रमाणादि का आलम्बन नहीं रहता। तत्पश्चात् तीसरी साक्षात् सिद्ध अवस्था है, वहाँ भी कोई आलम्बन नहीं है। इस प्रकार सिद्ध अवस्था में प्रमाण-नय-निक्षेप का अभाव ही है। संक्षिप्त में क्या कहते हैं? पहले प्रमाण से पूरी चीज़ द्रव्य और पर्याय क्या है - यह निर्णय करना। नय से एक-एक धर्म और एक-एक गुण और एक-एक पर्याय को निर्णय करना और निक्षेप से नाम, स्थापना, योग्यता और भाव क्या है, यह निर्णय करना। बस इतना। यह निर्णय करने के बाद उसका लक्ष्य छोड़ देना और निज चैतन्य का आश्रय करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट करना। फिर प्रमाण, नय, निक्षेप की श्रद्धा-ज्ञान में आवश्यकता नहीं। पश्चात् चारित्र के लिये विशेष सिद्ध करना हो तो चारित्र स्वभाव के आश्रय से होता है, राग के आश्रय से नहीं होता। मजबूत संहनन शरीर हो तो चारित्र होता है, ऐसा नहीं है। ऐसा निर्णय करके चारित्र प्रगट करना। फिर प्रमाण-नय-निक्षेप की आवश्यकता नहीं है। फिर केवलज्ञान हुआ, वहाँ आवश्यकता नहीं है, सिद्ध हुए वहाँ आवश्यकता नहीं है। इसका कलश आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)